आचार्य समन्तभद्र

आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य गृद्धपिच्छके पश्चात् जैन वाङ्मयकी जिस मनीषीने सर्वाधिक प्रभावना की और उसपर आये आघातोंको दूर कर यशोभाजन हुआ वह हैं स्वामी समन्तभद्राचार्य। शिलालेखों तथा परवर्ती ग्रन्थकारोंके ग्रन्थोंमें इनका प्रचुर यशोगान किया गया है। अकलंकदेवने इन्हें स्याद्वादतीर्थका प्रभावक और स्याद्वादमार्गका परिपालक, विद्यानन्दने स्याद्वादमार्गाग्रणी, वादिराजने सर्वज्ञप्रदर्शक, मलयगिरिने आद्य स्तुतिकार तथा शिलालेखोंमें वीर-शासनकी सहस्रगुणी वृद्धि करने वाला, श्रुतकेवलिसन्तानोन्नायक, समस्तविद्यानिधि, शास्त्रकार एवं कलिकालगणधर जैसे विशेषणों द्वारा उल्लेखित किया है।

समन्तभद्रका समय वस्तुतः दार्शनिक चर्चाओं, शास्त्रार्थों और खण्डन-मण्डनके ज्वारभाटेका समय था। तत्त्वव्यवस्था ऐकान्तिक की जाने लगी और प्रत्येक दर्शन एकान्त पक्षका आग्रही हो गया। जैन दर्शनके अनेकान्तसिद्धान्तपर भी घात-प्रतिघात होने लगे। फलतः आर्हत-परम्परा ऋषभादि महावीरान्त तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित तत्त्वव्यवस्थापक स्याद्वादको भूलने लगी, ऐसे समयपर स्वामी समन्तभद्रने ही स्याद्वादको उजागर किया और स्याद्वादन्यायसे उन एकान्तोंका समन्वय करके अनेकान्ततत्त्वकी व्यवस्था की।

इनका विस्तृत परिचय और समयादिका निर्णय श्रद्धेय पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारने अपने **'स्वामी समन्तभद्र'** नामक इतिहास-ग्रन्थमें दिया है। वह इतना प्रमाणपूर्ण, अविकल और शोधात्मक है कि उसमें संशोधन, परिवर्त्तन या परिवर्धनकी गुञ्जाइश प्रतीत नहीं होती। वह आज भी बिलकुल नया और चिन्तनपूर्ण है। विशेष यह है कि समन्तभद्र उस समय हुए, जब दिगम्बर परम्परामें मुनियोंमें वनवास ही प्रचलित था, चैत्यवास नहीं। जैसा कि उनके स्वयंभूस्तोत्रगत श्लोक १२८ तथा रत्नकरण्डश्रावकाचारके पद्य १४७ से प्रकट है[1]। इसके सिवाय कुमारिल (ई० ६५०) और धर्मकीर्ति (६३५) ने समन्तभद्रका खण्डन किया है[2], अतः वे उनसे पूर्ववर्ती हैं। आचार्य वादिराज[3] (१०२५ ई०) के न्यायविनिश्चयविवरण (भाग १, पृ० ४३९) गत उल्लेख (''**उक्तं स्वामिसमन्तभद्रैस्तुदुपजीविना भट्टेनाऽपि**') से स्पष्ट है कि कुमारिलसे समन्तभद्र पूर्ववर्ती हैं। शोधके आधारपर इनका समय दूसरी-तीसरी शताब्दी अनुमानित होता है।

समन्तभद्र द्वारा प्रतिपादित तत्त्व-व्यवस्था

आचार्य समन्तभद्रने प्रतिपादन किया कि तत्त्व (वस्तु) अनेकान्तरूप है—एकान्तरूप नहीं और अनेकान्त विरोधी दो धर्मों सत्-असत्, शाश्वत-अशाश्वत, एक-अनेक, नित्य-अनित्य आदि) के युगलके आश्रयसे प्रकाशमें आनेवाले वस्तुगत सात धर्मोंका समुच्चय है और ऐसे-ऐसे अनन्त सप्तधर्म-समुच्च विराट अनेकान्तात्मक तत्त्वसागरमें अनन्त लहरोंकी तरह लहरा रहे हैं और इसीसे उसमें अनन्त सप्तकोटियाँ (सप्तभङ्गियाँ) भरी पड़ी हैं। हाँ, दृष्टाको सजग और समदृष्टि होकर उसे देखना-जानना चाहिए। उसे यह ध्यातव्य है कि वक्ता या ज्ञाता वस्तुको जब अमुक एक कोटिसे कहता या जानता है तो वस्तुमें वह धर्म

---

१. जैन दर्शन और प्रमाणशास्त्र परिशीलन, पृ० १८० से १८७।

२. ३. यही ग्रन्थ, 'अनुसंधानमें पूर्वाग्रहमुक्ति आवश्यक : कुछ प्रश्न और समाधान शीर्षक लेख।

अमुक अपेक्षासे रहता हुआ भी अन्य धर्मोंका निषेधक नहीं है। केवल वह विवक्षावश या अभिप्रायवश मुख्य और अन्य धर्म गौण हैं। इसे समझनेके लिए उन्होंने प्रत्येक कोटि (भङ्ग-वचनप्रकार)के साथ 'स्यात्' निपात-पद लगाने की सिफारिश की और 'स्यात्' का अर्थ 'कथञ्चित्'—किसी एक दृष्टि—किसी एक अपेक्षा बतलाया। साथ ही उन्होंने प्रत्येक कोटिकी निर्णयात्मकताको प्रकट करनेके लिए प्रत्येक उत्तरवाक्यके साथ 'एवकार' पदका प्रयोग भी निर्दिष्ट किया, जिससे उस कोटिकी वास्तविकता प्रमाणित हो, काल्पनिकता या सांवृतिकता नहीं। तत्त्वप्रतिपादनकी इन सात कोटियों (वचन प्रकारों)को उन्होंने एक नया नाम भी दिया। वह नाम है भङ्गिनी प्रक्रिया—सप्तभङ्गी अथवा सप्तभङ्ग नय। समन्तभद्रकी वह परिष्कृत सप्तभङ्गी इस प्रकार प्रस्तुत हुई—

(१) स्यात् सत्‌रूप ही तत्त्व (वस्तु) है।
(२) स्यात् असत्‌रूप ही तत्त्व है।
(३) स्यात् उभयरूप ही तत्त्व है।
(४) स्यात् अनुभय (अवक्तव्य) रूप ही तत्त्व है।
(५) स्यात् सद् और अवक्तव्य रूप ही तत्त्व है।
(६) स्यात् असत् और अवक्तव्यरूप ही तत्त्व है।
(७) स्यात् और असत् तथा अवक्तव्यरूप ही तत्त्व है।

इस सप्तभङ्गीमें प्रथम भङ्ग स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षासे, दूसरा परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षासे, तीसरा दोनोंकी सम्मिलित अपेक्षासे, चौथा दोनों (सत्त्व-असत्त्व)को एक साथ कह न सकनेसे, पाँचवाँ प्रथम-चतुर्थके संयोगसे, षष्ठ द्वितीय-चतुर्थके मेलसे और सप्तम तृतीय-चतुर्थके मिश्ररूपसे विवक्षित हैं। और प्रत्येक भङ्गका प्रयोजन पृथक्-पृथक् है। उनका यह समस्त प्रतिपादन आप्तमीमांसामें[1] द्रष्टव्य है।

समन्तभद्रने सदसद्वादकी तरह अद्वैत-द्वैतवाद, नित्य-अनित्यवाद, आदिमें भी इस सप्तभंगीको समायोजित करके दिखाया है तथा स्याद्वादकी प्रतिष्ठा की है।

इस तरह तत्त्व-व्यवस्थाके लिए उन्होंने विचारकोंको एक स्वस्थ एवं नयी दृष्टि (स्याद्वाद शैली) प्रदानकर तत्कालीन विचार-संघर्षको मिटानेमें महत्त्वपूर्ण योगदान किया। दर्शन सम्बन्धी उपादानों— प्रमाणका स्वरूप, प्रमाणके भेद, प्रमाणका विषय, प्रमाणका फल, नयका स्वरूप, हेतुका स्वरूप, वाच्य-वाचकका स्वरूप आदिका उन्होंने विशद प्रतिपादन किया। इसके लिए उनकी आप्तमीमांसा (देवागम)का अवलोकन एवं आलोडन करना चाहिए। आप्तमीमांसाके अतिरिक्त स्वयम्भूस्तोत्र और युक्त्यनुशासन भी उनकी ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें जैन दर्शनके अनेक अनुद्घाटित विषयोंका उद्घाटन हुआ है और उनपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

●

---

[1] समन्तभद्र, आप्तमी० का० १४, १५, १६, २१।

आचार्य सामन्तभद्रका प्रभाव

कवीनां गमकानां च वादीनां वाग्मिनामपि ।
यशः सामन्तभद्रीयं मूर्ध्निचूडामणीयते ।।

• • •

अवटु-तटमटति झटिति स्फुट-पटु-वाचाट-धूर्जटेर्जिह्वा ।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितिवति का कथाऽन्येषाम् ।।

• • •

पूर्वं पाटलिपुत्र-मध्यनगरे भेरी मया ताडिता पश्चान्मालव-सिन्धु-ठक्क-विषये कांचीपुरे वैदिशे ।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं संकटं वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ।।

• • •

वन्द्यो भस्मक-भस्मसात्कृतिपटुः पद्मावतीदेवतादत्तोदात्तपद-स्वमन्त्र-वचन-व्याहूत-चन्द्रप्रभः ।
आचार्यस्स समन्तभद्र-गणभृद् येनेह काले कलौ जैनं वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्रं समन्तान्मुहुः ।।

• • •

कांच्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिनतनुर्लाम्बुशे पाण्डुपिण्डः पुण्ड्रोड्रे शाक्यभिक्षुः दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट् ।
वाराणस्यामभूवं शशधरधवलः पाण्डुरांगस्तपस्वी राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैन-निर्ग्रन्थवादी ।।

• • •

आचार्योहं कविरहमहं वादिराट् पण्डितोहं दैवज्ञोहं भिषगहमहं मान्त्रिकस्तान्त्रिकोहं ।
राजन्नस्यां जलधिवलयामेखलायामिलायामाज्ञासिद्धः किमिति बहुना सिद्धसारस्वतोहं ।।

■